भारत का विभाजन : उत्तरदायी तत्व एवं व्यक्ति ?

भारत का विभाजन एक ऐसा विषय है जिस पर विभाजन के पश्चात इतिहासकारों ने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं । कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह अपरिहार्य था जबकि अन्य इतिहासकार इसे अनावश्यक मानते हैं । उनका विचार है कि इसे बचाया जा सकता था । आयशा जलाल अपनी पुस्तक "द सोल स्पोक्-समेन" में लिखती हैं कि भारत का विभाजन न तो अपरिहार्य था और न उचित था – इसे बचाया जा सकता था । विभाजन का दु:खान्त कार्य इस लिए हुआ कि बड़ी आयु के भारतीय नेता शक्ति प्राप्त करने की जल्दी में थे ।[1] डॉ० राम मनोहर लोहिया का मत है कि भारत का विभाजन अतिवृद्ध नेताओं की देन है ।[2] अबुल कलाम आज़ाद ने अपनी पुस्तक "इण्डिया विन्स फ्रीडम" में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं । आयशा जलाल आगे कहती है कि न ही जिन्ना और न पण्डित जवाहर लाल नेहरू देश का विभाजन चाहते थे ।[3] उनका विचार था कि भारत का विभाजन उन कारणों से हुआ जो पण्डित नेहरू ने उत्पन्न कर दिये थे जिन पर जिन्ना नियन्त्रण करने में असमर्थ थे । आयशा का मत है कि जिन्ना ने साम्प्रदायिकता का सहारा अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए लिया था । उनका उद्देश्य लीग और कांग्रेस में बराबरी स्थापित करना था । वे लिखती हैं कि कायदे आज़म ने स्वयं को साम्प्रदायिकता से सदैव ऊपर रखने का प्रयत्न किया और

---

1. आयशा जलाल : द सोल स्पोक्समेन, कैंब्रिज यूनिवर्सटी प्रेस, लन्दन, 1985, उद्धरण "द टाइम्स ऑफ इण्डिया", सितम्बर 22, 1985.
2. डॉ. राममनोहर लोहिया : गिल्टी मैन ऑफ इण्डियाज़ पार्टिशन, हैद्राबाद, 1970, पृ० 1.
3. आयशा जलाल : द सोल स्पोक्समेन, उद्धरण "द टाइम्स ऑफ इण्डिया, सितम्बर 22, 1985 में.

अपनी दृष्टि में भारत की एकता को रखा ।[1] जिन्ना को अन्त में समय की आवश्यकता थी, जो न तो कांग्रेस नेता देने को तैयार थे और न ब्रिटिश सरकार ही ऐसा करना चाहती थी । इसलिए जिन्ना न तो पाकिस्तान को ठीक प्रकार से परिभाषित कर सके और न उचित ढंग से इसकी माँग प्रस्तुत कर सके । आयशा जलाल सीधी कार्यवाही को एक शक्तिपूर्ण आन्दोलन मानती हैं और कहती हैं कि जिन्ना का आदेश था कि यह दिन सीधी कार्यवाही के रूप में न मनाया जाय । परन्तु जिन्ना की प्रार्थना पर मुसलमानों ने ध्यान नहीं दिया ।[2]

उनका कहना है कि माउन्टबैटन एक चतुर व्यक्ति थे इसलिये उन्होंने विभाजन में जल्दबाज़ी की, और एक योजना प्रस्तुत की जिससे सन्तुष्ट होकर नेहरू, पटेल और अन्य कांग्रेसी नेताओं ने उसे स्वीकार कर लिया । परन्तु उसने जिन्ना को विचलित कर दिया । इसके लिये उनका तर्क है कि 8 अप्रैल, 1947 को जिन्ना ने माउन्टबैटन से प्रार्थना की कि वे बंगाल और पंजाब का विभाजन न करें क्योंकि इन प्रान्तों के लोग अपने को कांग्रेस का सदस्य न समझकर बंगाली और पंजाबी समझते थे । जिन्ना के इन शब्दों से जलाल इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि जिन्ना भारत के विभाजन के बिलकुल विरुद्ध थे । जब जिन्ना से माउन्टबैटन ने पाकिस्तान सीमा निर्धारण के लिये कहा तो जिन्ना ने कह दिया कि वे अपना कोई प्रस्ताव नहीं रखेंगे बल्कि वे कांग्रेस के बंगाल और पंजाब के विभाजन के प्रस्तावों को देखेंगे ।[3]

अबुल कलाम आज़ाद ने विभाजन का सबसे अधिक दोष सरदार पटेल पर लगाया । उनका कहना था कि भारत में सबसे पहला व्यक्ति जो माउन्टबैटन के आकर्षण में आया वह सरदार पटेल थे और उन्होंने भारत-विभाजन को स्वीकार किया ।[4]

---

1. आयशा जलाल : द सोल स्पोक्समेन, उद्धरण "द टाइम्स आफ इण्डिया", सितम्बर 22, 1985 में.
2. वही.
3. वही.
4. अबुल कलाम आज़ाद : इण्डिया विन्स फ्रीडम, पृ0183.

ये सब इस प्रकार के विचार हैं जिनमें इतिहास के तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर अथवा बिलकुल उल्टा प्रस्तुत किया गया है । भारत के विभाजन की प्रक्रिया मुस्लिम साम्प्रदायिकता में सदैव रही है । इसके साथ-साथ उनकी पान-इस्लामिक भावना ने उसे कभी भारत से नहीं जुड़ने दिया । ब्रिटिश शासन से पूर्व इस भावना का भारतीयता से कोई टकराव इसलिये नहीं था कि बहुत से शियासी और शासक वर्ग के लोग भारत के बाहर -ईरान, अरब, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान इत्यादि देशों से आते थे । ब्रिटिश शासन की समाप्ति पर यह भावना बड़ी तीव्र रही । खिलाफत आन्दोलन पान-इस्लामिक भावना पर ही आधारित था । भारत के मुसलमानो में अपने सम्प्रदाय को पृथक रखने की भावना सदैव बहुत तीव्र रही है और इसने भारत के गौरवमयी अतीत को भी अस्वीकार किया । उनका लगाव सदैव अरबी तथा ईरानी संस्कृति, लिपि, रीति-रिवाज और इतिहास से रहा है जिससे उनमें अलगाव की प्रवृत्ति धीरे-धीरे पनपती रही । अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुस्लिम पुनरूत्थान के कारण भारत के मुसलमानों ने अपने को भारतीय सांस्कृतिक वातावरण से बिलकुल अलग-थलग कर लिया । शाहवली उल्लाह इसके सबसे पहले प्रवर्तक थे । ब्रिटिश काल में दोनों सम्प्रदायों के लोग साथ-साथ रहे परन्तु ये दोनों पूर्णरूप से प्रत्येक क्षेत्र में विभाजित रहे । देश के अनेक भागों में जिन हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन कर लिया था उन्होंने भी हिन्दू संस्कृति और धर्म की अनेक परम्पराओं को अपनाये रखा था । उदाहरणार्थ, गुजरात में कमालिया मुसलमान एक हिन्दू देवी की पूजा करते थे तथा बहचाजीं मुसलमान देवताओं के मन्दिरों में संगीत बजाने का कार्य करते थे । उससे दोनों सम्प्रदायों के लोगों में राष्ट्रीय मेलमिलाप की भावना को बल मिलता था । परन्तु शरियत उल्लाह ने बंगाल में अपने मुस्लिम अनुयायियों को आदेश दिया कि वे सब शरियत के अनुसार कार्य करें । हिन्दू त्योहारों को न मनायें क्योंकि इससे खुदा की वैधानियत का उल्लघंन होता है । इससे हिन्दू व मुसलमानों के मेल-मिलाप के कार्य में व्यवधान पड़ा ।[1] साथ ही इससे मुसलमानों में

---

1. मुशिरूल हसन : नेशनलिज्म एण्ड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इण्डिया, पृ022-23.

अलगाव की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी । शरियत उल्लाह के प्रयत्नों के कारण अर्द-मुसलमान ईसाईयों से बिलकुल अलग हो गये और उन्हें विस्मित इस्लामी क्षेत्र का सदस्य होने का आभास होने लगा । इस आन्दोलन के भारी राजनैतिक प्रभाव पड़े ।

दारूल उलूम और नदवात के स्थापित होने के पश्चात मुसलमानों को अपनी इस्लामिक विशिष्टता का ज्ञान होने लगा । इसीलिये उलमा ने धर्म निरपेक्षता का विरोध किया और उन्होंने मध्यकालीन वस्त्र पहन कर मुसलमानों में अभारतीय संस्कृति का संचार किया ।[1]

कांग्रेसी नेताओं की दो गलत धारणायें अन्त तक बनी रहीं जिनसे देश की एकता तो उत्पन्न हो ही न सकी बल्कि इनसे हिन्दुओं को बड़ी हानि पहुँची । उनकी पहली धारणा थी कि सभी भारतीयों के सामान्य हित हैं और इन हितों की पूर्ति एक राष्ट्रीय संगठन द्वारा की जा सकती है । दूसरी धारणा थी कि सभी भारतीय सजातीय समुदाय हैं । गांधी जी व पण्डित नेहरू इस बात को अन्त तक दोहराते रहे परन्तु इसका मुसलमानों पर उल्टा ही प्रभाव पड़ा इससे पहले भी मुसलमानों में जातीय एकरूपता का विरोध था । सर सैयद अहमदखाँ ने स्वयं सरकार को इस बात से सचेत किया था कि प्रतिनिधि संस्थायें भारत के लिये उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि यहाँ की जनसंख्या अत्यधिक विषमतापूर्ण है । इससे यहाँ भारी सामाजिक व राजनीतिक खतरे उत्पन्न हो जायेंगे ।[2] यदि देश भर में पृथक मतदान भी लागू नहीं किया जाता तो भी भारत में सजातीय भावनाओं वाले समाज की स्थापना असम्भव थी क्योंकि कोई भी सम्प्रदाय से ऊपर उच्च राष्ट्रवाद को स्वीकार करने को तैयार नहीं था । प्रत्येक भारतीय हिन्दू या मुसलमान यह अनुभव करता था ।[3] कांग्रेस के स्थापित होने पर भी साधारणतया मुसलमान कांग्रेस से पृथक रहे ।

---

1. मुशिरूल हसन : नेशनलिज्म एण्ड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इण्डिया, पृ० 26 .
2. राजेन्द्र प्रसाद : इण्डिया डिवाइडिड, पृ० 17.
3. वही, पृ० 18.

बदरूद्दीन तैयब जी का यह कथन बिलकुल सही है कि मुसलमानों की कांग्रेस में दिलचस्पी स्थानीय विशेष कारणों से अस्थायी थी ।[1] मुसलमानों ने कांग्रेस की प्रतिनिधि संस्थाओं का इसलिये विरोध किया क्योंकि वे जानते थे कि स्थानीय संस्थाओं में प्रतिनिधित्व के उनके सीमित अवसर रह जायेंगे ।

सन् 1917-19 के बीच का काल खिलाफत आन्दोलन के कारण हिन्दू-मुस्लिम अस्थायी शान्ति का काल रहा परन्तु इस काल में कांग्रेस ने मुस्लिम पान-इस्लामिज़्म को बढ़ावा देकर उनकी धार्मिक कट्टरता को बढ़ावा दिया । कांग्रेसी नेता अच्छी तरह जानते थे कि टर्की की खिलाफत से भारत देश का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था और भारत के खिलाफत आन्दोलन के मुस्लिम नेताओं का केन्द्र-बिन्दु कुरान थी फिर भी कांग्रेसी नेता इस धर्मान्धता के कार्य में अग्रणीय हो गये । मौहम्मद अली इस्लाम के अतिरिक्त और किसी बात से सम्बन्ध नहीं रखते थे । अबुल कलाम आज़ाद ने घोषणा की कि जब तक इस्लाम का सारा जगत एक संगठन में नहीं बंधता तब तक भारत के थोड़े से मुसलमान चालीस करोड़ मुसलमानों की कैसे मदद कर सकते है ।[2] कांग्रेसी नेताओं ने मौहम्मद अली, ज़फर अली खाँ और अबुल कलाम आज़ाद से एक आपसी सम्पर्क बनाने का प्रयत्न किया परन्तु वे यह भूल गये कि इन नेताओं का आधार धर्म और भावुकता थी । इस सहयोग का हिन्दुओं को भारी मूल्य चुकाना पड़ा । इससे मुसलमानों में अलगाव की भावना को और अधिक बल मिला । खिलाफत आन्दोलन के कारण मुस्लिम लीग की कार्यवाही शिथिल पड़ गयी थी । मुस्लिम लीग के सोलहवें अधिवेशन में बम्बई में 30 दिसम्बर, 1924 को उसके अध्यक्ष सैयद अली ने कहा कि मुस्लिम लीग की अकर्मण्यता खिलाफत आन्दोलन और टर्की की समस्याओं के कारण थी ।[3] मुस्लिम लीग का यह अधिवेशन पूर्ण रूप से पृथकतावादी सिद्धान्तों के अनुरूप था । इससे मेल-मिलाप की नीति बिलकुल त्याग दी गयी थी ।

---

1. मुशिरूल हसन : नेशनलिज़्म एण्ड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इण्डिया पृ० 34.
2. वही, पृ० 11.
3. सैयद शरीफुद्दीन पीरजादा : फाउन्डेशन्स ऑफ पाकिस्तान भाग 2, पृ० 16.

उपरोक्त विचारधाराओं तथा तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यह कहना अतर्कसंगत न होगा कि पाकिस्तान का निर्माण किसी भी प्रकार रोका नहीं जा सकता था — यह अवश्यम्भावी था । इसके लिए न तो अंग्रेजों की और न कांग्रेस की नीतियां जिम्मेदार थीं । पाकिस्तान किसी भावनात्मक उत्तेजना के कारण नहीं बना, बल्कि इसका निर्माण एक तर्कसंगत ऐतिहासिक प्रक्रिया के कारण हुआ । हिन्दू-मुसलमानों की सामाजिक व्यवस्था सदैव पृथक रहीं । दोनों की संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, लिपि और विचारधाराएं एक दूसरे से भिन्न थीं । इन दोनों संस्कृतियों का संयोजन नहीं हो सकता था । इनमें कामचलाऊ साझेदारी केवल तब तक चलती रही जब तक मुस्लिम शासक अपनी बात थोपते रहे अथवा ब्रिटिश सरकार अपना अधिकार प्रयोग कर दोनों समुदायों से काम चलाती रही । परन्तु जैसे ही मुसलमानों में पुनरूत्थान प्रारम्भ हुआ और ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को अधिकार देने प्रारम्भ कर दिये — मुसलमानों के मन में हिन्दू प्रभुत्व का भय उत्पन्न हो गया । सर सैयद अहमद खाँ से लेकर जिन्ना तक किसी भी प्रभावी मुस्लिम नेता ने कभी यह नहीं कहा कि ये दोनों समुदाय एक साथ मेल से रह सकते हैं । सर सैयद अहमदखां का कहना था कि मुझे यकीन है कि यहाँ दोनों सम्प्रदाय हृदय से साथ नहीं रह सकेंगे और भविष्य में शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ दोनों सम्प्रदायों में शत्रुता बढ़ेगी । उनका कहना था कि ये दोनों कौमें एक देश में एक सत्ता में भागीदार नहीं रह सकेंगी ।[1] उनका यह कथन शत-प्रतिशत सही सिद्ध हुआ । जिन्ना सदैव यह प्रयत्न करते रहे कि मुसलमानों का एक पृथक देश हो । डॉ० इकबाल का भी यही विचार था कि मुसलमानों का एक पृथक देश हो जहाँ वे शरियत के अनुसार रह सकें ।[2]

---

1. एम. ए. इस्पहानी : फैक्टर्स लीडिंग टू द पार्टिशन ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, जार्ज ऐलन एण्ड अनविन लिमिटेड, लन्दन, 1970, पृ० 331.
2. सैयद शरीफुद्दीन पीरजादा: फाउन्डेशन्स ऑफ पाकिस्तान, भाग 2, इलाहाबाद में 29-30 दिसम्बर 1930 को ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग के 21 वें अधिवेशन में डॉ० इकबाल का अध्यक्षीय भाषण ।

मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन योजना को भी इसी लिये स्वीकार किया था क्योंकि इसमें पाकिस्तान के निर्माण के लिये साफ रास्ता था ।[1] इससे पूर्व भी 24 दिसम्बर, 1944 को गांधीजी ने जिन्ना को इस आशय से एक पत्र लिखा कि वे विदेश-विभाग, सुरक्षा, आवागमन और व्यापार को छोड़कर दो पृथक राज्यों के निर्माण पर सहमत हो जायें ; परन्तु जिन्ना ने गांधी जी का यह प्रस्ताव यह कहकर अस्वीकृत कर दिया कि यह प्रस्ताव लाहौर प्रस्तावों के अनुरूप नहीं है इसलिये इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता ।[2] इसलिये यह कहना कि जिन्ना कभी एक ढीले-ढाले संघ राज्य पर सहमत हुए बिलकुल त्रुटिपूर्ण है ।

कुछ इतिहासकारों का विचार है कि जिन्ना प्रारम्भ से ही गांधीजी को नापसन्द करते थे । जिन्ना को गांधी जी का राजनीति में धार्मिक दृष्टिकोण बिलकुल पसन्द नहीं था । गांधीजी के असहयोग और अवज्ञा आन्दोलन, उनके उपवास और राजनीतिक यात्राएँ उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं थीं । राजनीतिक मध्यम-वर्गीय मुसलमान गांधीजी के हिन्दू-मुस्लिम एकता के अभिवचनों को हिन्दू प्रभुत्व के लिये एक साधन और चाल मानते थे ।[3]

जिन्ना का मुस्लिम क़ौम का विचार गांधी जी के लिए एक घृणित विचार था तथा वे उसे काल्पनिक व अव्यवहारिक मानते थे क्योंकि भारत में मुसलमानों की संख्या अनुपात में बहुत कम थी और वे समस्त भारत में बिखरे पड़े थे । दूसरी ओर गांधीजी का हिन्दू-मुस्लिम सहिष्णुता का विचार होता था और विशेष रूप से उस समय जब गांधीजी "राम-राज्य" की बात करते थे ।[4]

---

1. एम. ए. इस्फहानी : फैक्टर्स लीडिंग टू द पार्टिशन ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, पृ0356.
2. एस. आर. मेहरोत्रा : टुवार्ड्स इण्डियाज़ फ्रीडम एण्ड पार्टिशन, पृ0 214.
3. वेद मेहता : महात्मा गांधी एण्ड हिज ऐपोसिल्स, एन्ड्रीड्श लिमिटेड, लन्दन, 1977, पृ0 168.
4. वेद मेहता : महात्मा गांधी एण्ड हिज़ ऐपोसिल्स, पृ0 168.

1944 तक जिन्ना के आस-पास भारत का 95 प्रतिशत मुसलमान एकत्रित हो गया था । जो मुसलमान उनका विरोध कर रहे थे उनमें कोई दम नहीं था और न उनकी कोई सुनने को तैयार था । इसलिये जिस समय अंग्रेज भारत छोड़ने को तैयार थे उस समय जिन्ना की मुसलमानों के अपने देश की माँग एक ऐसी बाधा बन गयी की गांधी जी को विभिन्न प्रस्ताव लेकर जिन्ना के पास कई बार जाना पड़ा । परन्तु जिन्ना पाकिस्तान की मांग को लेकर दृढ़ थे इसलिये उनकी गाँधी जी से वार्ता टूट गयी । इससे बड़ी निराशा गांधी जी के जीवन में कभी नहीं आयी थी ।

ब्रिटिश सरकार किसी भी समुदाय को एक साथ रहने के लिये बाध्य नहीं कर सकती थी । मुस्लिम लीग ने हिन्दू-मुस्लिम दंगो का उदाहरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि यह सब दोनों सम्प्रदायों की शत्रुता के कारण था । कांग्रेसी नेता बढ़ती हुई हिंसा से घबरा उठे थे । गांधी जी भी हतप्रभ थे । उन्होंने जिन्ना पर धार्मिक भावनाओं को उभारने का दोष लगाया, यद्यपि उन्होंने यह स्वीकार भी किया कि यह शत्रुता की भावना पहले से ही विद्यमान थी ।[1] गाँधी जी विभाजन के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाना चाहते थे परन्तु उनके अन्तः मन ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया , क्योंकि उनके अनुसार ब्रिटिश सरकार नेकनीयत से कार्य कर रही थी । इसलिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन उनके विरुद्ध ठीक नहीं था ।[2]

लीग के लगातार प्रचार के कारण साम्प्रदायिक घृणा इस सीमा तक फैल गयी थी कि गांधी जी के लगातार प्रयत्न और कांग्रेसी नेताओं की सहनशीलता के होते हुए भी इसका विष बढ़ता ही चला गया । मुसलमानों को यह समझा दिया गया था कि हिन्दुओं के सत्ता में आते ही उनका धर्म, संस्कृति और भाषा समाप्त हो

---

1. वेद मेहता : महात्मा गांधी एण्ड हिज ऐपोस्तिल्स, पृ० 170.

2. वही, पृ० 170.

जायेंगी । मुसलमानों के लिए पृथक राज्य के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था।[1] कुछ मुस्लिम-लीग-नेता तो इससे भी आगे निकल गये थे । सरदार अब्दुर्रब नश्तर ने घोषणा की कि भारत के अल्पसंख्यकों की रक्षा इस बात पर निर्भर करती है कि पाकिस्तान कितना शक्तिशाली रहता है । उन्होंने वायदा किया कि वे भारत के मुसलमानों की रक्षा के लिए सब कुछ करेंगे ।[2] दोनों सम्प्रदायों के सम्बन्धों में उस समय तक कोई बिगाड़ नहीं आया जबतक कि एक दूसरे के हितों में टकराव नहीं आया और जन साधारण को उत्तेजित नहीं किया गया । परन्तु जब सत्ता धीरे-धीरे भारतीयों को सौंपी जाने लगी तब दोनों ही सम्प्रदायों में कटुता होना स्वाभाविक था ।

डॉ० राममनोहर लोहिया भारत विभाजन के विभिन्न कारण बतलाते हैं । उनके अनुसार भारत के विभाजन का पहला कारण ब्रिटिश शासन की प्रवंचना थी ।[3] अनेक इतिहासकारों ने इसी कारण को प्रमुखता दी है । परन्तु द ट्रांसफर ऑफ पावर के प्रकाशन के बाद यह तर्क कि ब्रिटिश सरकार भारत का विभाजन चाहती थी अथवा लीग को किसी प्रकार का सहारा देती थी बिलकुल निराधार सिद्ध होता है । वास्तव में यह कारण उन लोगों द्वारा अपनी लज्जा बचाने के लिए प्रस्तुत किया गया था जो दोनों सम्प्रदायों में मेल-मिलाप कराने में असफल रहे थे । इसके लिए इतिहास साक्षी है कि बिना अंग्रेजों के भी इन सम्प्रदायों में पहले से भी अधिक कटुता है । इसका प्रमाण स्वतन्त्रता के बाद भारत में हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगे हैं । जब कोई व्यक्ति असफल होता है और उसका शत्रु प्रबल होता है तब सदैव किसी भी घटना के लिए तीसरे व्यक्ति अथवा पक्ष को दोष देना एक साधारण प्रवृत्ति है । उन्होंने दूसरा कारण कांग्रेस नेताओं की बढ़ती आयु को बतलाया है जिसका प्रमाण न तो इतिहास

---

1. डौर्थी नौरमन : नेहरू: द फर्स्ट सिक्सटी यीयर्स, भाग 2, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1965, पृ० 559.
2. वी. वी. नागरकर : जेनिसस ऑफ पाकिस्तान, पृ० 460.
3. राममनोहर लोहिया : गिल्टीमैन ऑफ इण्डियाज पार्टिशन, पृ० ।.

के प्रलेखों से मिलता है और न सरकारी दस्तावेजों से । ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० लोहिया और अबुल कलाम आज़ाद की यह धारणा व्यक्तिगत विद्वेष और असफलताओं पर आधारित है । जब भारत का विभाजन हो रहा था तब ये ड्राइंग-रूम-नेता से कुछ अधिक नहीं थे । अबुल कलाम आज़ाद केवल खिलाफत आन्दोलन तक, जो एक धार्मिक आन्दोलन था, मुसलमानों के नेता बने रह सके । इसके पश्चात उनका 1947 तक मुसलमानों में कोई प्रभाव नहीं था ।[1] राष्ट्रवादी मुसलमानों की मुसलमानों में कोई जड़ नहीं थी । इसका अस्तित्व केवल अखबारों तक सीमित था । इसलिए ये मुसलमानों में व्याप्त पृथकतावादी ताकतों का न तो मुकाबला कर सकते थे और न विरोध । इसलिए यह एक मृतसम्प्रदाय था ।[2] डॉ० लोहिया विभाजन का एक अन्य कारण जनसाधारण में साहस की कमी और सहनशीलता बतलाते हैं । भारत के विभाजन में जनसाधारण की कोई भूमिका नहीं थी और मुसलमान जनसाधरण को जहाँ भी भूमिका दी गयी उन्होंने भारत के विभाजन के पक्ष में मत दिया । विभाजन से पूर्व हिन्दुओं ने काफी सीमा तक सहनशीलता का परिचय दिया । सीमाप्रान्त और नोआखाली में हिन्दुओं ने उस सीमा तक सहनशीलता दिखलाई कि कोई भी भारतीय नेता उस सीमा तक सहन करने का साहस नहीं कर सकता था । डॉ० लोहिया भारत-विभाजन का एक और कारण गांधी जी की अहिंसा की नीति बतलाते हैं । परन्तु उन परिस्थितियों में यदि गांधी जी हिंसावादी भी होते तो भी भारत का विभाजन नहीं रुक सकता था । करोड़ों लोगों को न तो अंग्रेज और न गांधी जी एकता के सूत्र में बलात् बांध सकते थे । इसलिए डॉ० लोहिया का उपरोक्त तर्क बेजान प्रतीत होता है । अन्त में डॉ० लोहिया हिन्दू धर्म को इसके लिए दोषी बतलाते हैं । पूरे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में और इससे पूर्व हिन्दुओं की दशा एक दीन समुदाय की तरह रही है । कांग्रेस नेता उसके पक्ष में एक भी शब्द बोलने को अपना अपमान समझते थे । और हिन्दू महासभा

---

1. मुशिरुल हसन : नेशनलिज्म एण्ड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इण्डिया, पृ0309.
   तथा
   नेहरू संग्रहालय, नई दिल्ली, बोम्बे क्रॉनिकल, अगस्त 8, 1942.
2. मुशिरुल हसन : मुस्लिम्स एण्ड द कांग्रेस, पृ0 33.

का उस पर कोई प्रभाव नहीं था । इस प्रकार वह सामाजिक और राजनीतिक ढंग से उपेक्षित और अरक्षित रहा, इसलिए उसमें दर्प रहना अमनोवैज्ञानिक तथ्य है ।

यदि मुसलमान पृथक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को मानता है तो इसमें हिन्दू का कोई दोष नहीं है । यदि आर्थिक या सामाजिक क्षेत्र में मुसलमान पिछड़ गया था तो इसके लिए भी हिन्दू दोषी नहीं था, क्योंकि मुसलमान ने स्वयं ही आनुपातिकता को अपनाने से इंकार कर दिया था । देवबन्द के उलमा ने अंग्रेजी शिक्षा को अपनाने का जोर-शोर से प्रचार किया ।[1] इतिहास ने उन्हें अन्तिमबार यह अवसर दिया कि वे हिन्दुओं के साथ मिलकर भारतीय राष्ट्रवाद को सुदृढ़ करें । परन्तु उन्होंने यह अवसर भी खो दिया । हिन्दू सदैव से उदार मानवतावादी परम्पराओं का पालन करता रहा है और यही परम्परा गांधी जी व नेहरू जी ने अपनायी । परन्तु इसे हिन्दुओं की कमजोरी और चालबाजी की संज्ञा दी गयी ।

मुस्लिम लीग और मुसलमानों की एक बड़ी संख्या ने हिन्दुओं पर सदैव अपनी इच्छा थोपने का प्रयत्न किया । यह मुसलमानों की ज़िद थी कि भारत को तब तक स्वतन्त्रता नहीं दी जाय जब तक मुसलमानों की पृथक राज्य की मांग स्वीकार न कर ली जाय । प्रत्येक प्रभावी मुस्लिम नेता ने कभी भी एकता की बात नहीं कही । सर सैयद से लेकर डॉ० इकबाल और जिन्ना तक सभी मुस्लिम नेता दृढ़ता के साथ पृथकता की मांग करते रहे । और धर्म का सहारा लेकर उन्हें यह बतलाते रहे कि वे सभी मुसलमान एक विशाल मुस्लिम जगत के हिस्से हैं और वे हिन्दुओं से पृथक हैं ।[2] इसका प्रभाव ऐसे धर्मावलम्बियों पर होना स्वाभाविक था जिनका धर्म अन्य धर्मों की अपेक्षा अधिक उत्तेजक है । गांधी जी का उदार मानवतावादी दृष्टिकोण इस्लाम के अनुयायियों पर इस लिए प्रभाव न डाल सका

---

1. हमीद दलवाई : मुस्लिम पॉलिटिक्स इन इण्डिया, निखिकेता पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1969, पृ० 34.
2. आर. सी. मजूमदार : स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, भाग II, पृ० 537.

सका क्योंकि इस्लाम का किसी अन्य धर्म के साथ मेल नहीं खाता । भारत के विभाजन से पूर्व भारतीय मुसलमान अपने को अल्पसंख्यक न मानकर एक ऐसा पृथक सम्प्रदाय मानते थे जो भारत के अव्यवस्थित बहुसंख्यक समाज से कहीं अधिक व्यवस्थित था ।[1] यह धारणा भी किसी सीमा तक भारत के विभाजन के लिए जिम्मेदार थी । यदि भारत का मुसलमान अपने को भारतीय समाज का एक अंग मानता और गैर-मुस्लिम नागरों के साथ बराबरी पर रहने को तैयार होता तो विभाजन रुक सकता था ।

---

1. सैयद शरीफुद्दीन पीरज़ादा : फाउन्डेशन्स ऑफ पाकिस्तान, भाग 2, पृ० 51